तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

'विवेच्य उपन्यासों का विवेचनात्मक विश्लेषण'

प्रस्तावना :–

हिंदी साहित्य की लोकप्रिय साहित्यिक विधा के रूप में 'उपन्यास विधा' को काफी सफलता मिल चुकी है। प्रेमचंद पूर्व-युग से लेकर बीसवीं सदी के अंतिम दशक तक आते-आते यह विधा अधिक प्रौढ और सशक्त बन चुकी हैं। तिलस्मी-अय्यारी, ऐतिहासिक विषय की प्रधानता होनेवाले उपन्यासों ने प्रेमचंद युग में करवटें बदल ली और सुदूर अँचलों में बसे प्रगति से वंचित ग्रामीणों का जीवन उपन्यास का प्रमुख विषय बन गया। प्रेमचंद ने पहली बार सुदूर अँचलों में बसे और निरीह भोले–भाले ग्रामीण लोगों को उपन्यास के केंद्र में लाने का प्रयास किया और 'रेणु युग' से यह लगादार बढ़ता गया।

स्वाधीनता आंदोलन ने समस्त भारत को चेतनामयी बनाया। महात्मा गांधी के 'देहातों की ओर चलो' के नारे और 'सर्वोदय आंदोलन' ने देहातों के महत्त्व को उजागर किया। स्वाधीनता आंदोलन से प्रभावित साहित्यकारों ने गाँव, ग्रामीण-जीवन की दुर्बलताएँ, प्रगति के लिए छटपटाते पहाडी अँचलों, किसान–मजदूरों का शोषण आदि को उपन्यासों द्वारा वाणी देने का प्रयास किया।

स्वाधीनता के बाद भारत में ग्रामीणों का मोहभंग हुआ। बरसों की गुलामी से मुक्त हुए भारतवासी पूँजीवादी व्यवस्था के गुलाम बने। आजादी चंद पूँजीपति लोगों के हात का खिलौना बनी। सरकारी नीति देहातों के विनाश का पैगाम लेकर आयी। विभन्न विकास योजनाओं के नामपर विस्थापन के रुप में गाँवों को उजाडा गया। ग्रामीण जनता फिर एक बार कालों की काली व्यवस्था की गुलाम बनी। सच्चे विकास और मुक्ति के लिए छटपटाते गाँव अनेक साहित्यिकों के उपन्यास का विषय बनते गए।

प्रस्तुत लघुशोध–प्रबंध के तृतीय अध्याय के अंतर्गत 20 वीं सदी के अंतिम दशक के उन तीन उपन्यासों का विवेचनात्मक विश्लेषण किया है, जो गाँव के लोक-जीवन की गाथा को प्रस्तुत करते हैं। वीरेंद्र जैन के 'डूब' (1991),मैत्रेयी पुष्पा के

'इदन्नमम' (1994), और अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'मुखडा क्या देखे' (1996),ये तीन उपन्यास बीसवीं सदी के अंतिम दशक की सशक्त रचनाएँ है, जो गाँव में बसे लोगों के शोषण, आजादी से हुआ उनका मोहभंग, विकास के नामपर विस्थापन, नारी शोषण, भ्रष्ट सरकारी नीति आदि की पोल खोल देते हैं। अतः हमनं प्रत्येक उपन्यास के महत्त्वपूर्ण बिंदुओं पर विवेचन कर के उसका विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

3.1. वीरेंद्र जैन के 'डूब'(1991),उपन्यास का विवेचनात्मक विश्लेषणः–

20 वीं सदी के अंतिम दशक के युवा उपन्यासकारों में वीरेंद्र जैन का नाम शीर्षस्थ है। सन् 1991 में प्रकाशित, 'डूब' उनका श्रेष्ठ और सन्मानित उपन्यास है। कुल 288 पन्नों में आबद्ध उपन्यास तीन भाग में विभाजित किया है। पहली डुबकी, दूसरी डुबकी और तिसरी डुबकी नामक भागों में बीस अध्याय लिखे गए हैं। लेखक को इस रचना के लिए 'प्रेमचंद महेश सम्मान' और मध्यप्रदेश साहित्य परिषद के 'वीरसिंह देव पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है।

विकास प्रक्रिया के तले दबी ग्रामीण जनता की त्रासदी को सूक्ष्मता तथा संवेदना से विश्लेषित किया गया है। 'डूब' संघर्षरत ग्रामीण जीवन की व्यथा की कथा है। 'बुँदेलखंड' क्षेत्र पर केंद्रित यह एक आँचलिक उपन्यास है, जिसमें लडैई गाँव की जनता की मार्मिक जीवन कथा है। मध्य भारत में बसे गाँवों के शोषणग्रस्त जीवन का कडवा सच लेखक ने लडैई गाँव को प्रतिनिधि रूप में रखकर उजागर किया है। मध्यप्रदेश के पिछडे आँचल की पीड़ा को पत्तों–रेशों सहित उकेर ने का लेखक ने प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। "'गोदान' और 'मैला आँचल' के बाद के भारतीय ग्रामीण जन के शासन और समाज द्वारा किए गए सुनियोजित दमन, शोषण और उपेक्षा का मर्मस्पर्शी दस्तावेज है 'डूब'।"[1]

सामंत वर्ग, ब्राह्मण और सर्वहारा वर्ग का वर्णन 'डूब' में मिलता है। वोट की राजनीति, जातीय गिरोहबंदी, परंपरागत मान्यताएँ, जातीय–अंतर्जातीय भावात्मक रिश्ते, साव बिरादरी द्वारा हुआ शोषण, उनके हथकंडें, सरकारी भ्रष्टनीति, विकास के नाम पर विस्थापन आदि के कारण मुक्ति के लिए छटपटाते गाँव इन ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलुओं द्वारा 'डूब' का विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

3.1.1 जातीय–अंतर्जातीय भावात्मक यौन–संबंध :–

वीरेंद्र जैन के 'डूब' उपन्यास में जातीय–अंतर्जातीय पात्रों द्वारा भावात्मक रिश्ते बनाए जाते हैं। उपन्यास में बामन महाराज का बेटा कैलाश और अहीर चंद्रभान की बेटी अक्कल के बीच अवैध यौन–संबंध, रमते सलैया के बेटे दीपू और कन्नु अहीर की लडकी सावितरी के अवैध यौन–संबंध तथा अट्टू साव और गौराबाई के बीच अवैध–यौन और भावात्मक संबंध है।

कैलाश बामन महाराज का एकलौता बेटा है। चाल–चलन से एकदम आवारा और बदमाश है। मंदिर में आई अहीर चंद्रभान की बेटी अक्कल को जबरदस्ती अपने शारीरिक भूख का शिकार बनाता है, जिस के कारण अक्कल गर्भवती हो जाती है और कुँवारी माता बनने के लिए अभिशप्त है। अक्कल का पिता न्याय माँगने जाता है –"कैलाश महाराज का बच्चा पल रहा है हमरी बिटिया के कुँवारे पेट में।"[2] तो बामन महाराज राजनीति के बल पर उसे गाँव से निष्कासित करते हैं। अतः अक्कल कैलाश के यौन-उत्पीड़न का शिकार होती है।

रमते सलैया के लडके दीपू और कन्नू अहीर की लडकी सावितरी दोनों आपस में प्यार करते हैं। सावितरी की शादी होती है और उसके बिदा होते समय दीपू सावितरी को पकडकर अपने घर में ले जाता है, और मुकाबले के लिए तैयार होता है।

उपन्यास में अट्टू साव और गोराबाई का रिश्ता भावात्मक यौन–संबंधों का रिश्ता है। उसमें प्रेम भी है, सैक्स भी है और समर्पण की भावना भी है। गोराबाई एक लुहार है तो अट्टू सामंती वर्ग के है। "जब से गौना होकर आई गोराबाई, अट्टू साव को मन–ही–मन दिल दे बैठी है। यह बात सिवा अट्टू साव के कौन नहीं जानता।"[3] गोराबाई का पति मगन बेडनी बनकर शादी ब्याह में नाचता फिरता है। "मरद हमरा मरद है ही नहीं, यह भान होने पर, इससे पहले ही वह किसी और से हमल से रह पाती, अपने मरद के सगे गुइयाँ अट्टू साव को मन में ला बसाया गोराबाई ने।"[4] अट्टू साव का भी गोरा के प्रति विशेष अनुराग रहा है। अट्टू साव जब गाँव से चले जाते हैं तब वह विरहिणी की भाँति छटपटाती हैं। बरसों से लगी प्यास का शमन तब होता है जब अट्टू साव गाँव से लौटते हैं – "अपना इरादा जाहिर करने के साथ ही भौजी उठी और अनमने लाला को खाट के एक किनारे पर खिसकाकर लेट गई उनकी बगल में। अट्टू साव दोनों हाथों में सिर चाँपकर लेटे रहे मोंगे–मोंगे। गुइयाँ लाला की इस दशा पर भौजी की निगाह पडी कि वह मुस्काई मंद–मंद। अपनी धोती का पल्ला जमीन पर पटककर पोलका के बटन खोले और अगली हिदायत दी लाला को,

'चलो, मुँह फेरो हमरी ओर।"[5] अट्टू साव गोराबाई के सामने शादी का प्रस्ताव रखते हैं, तो वह उसे अस्वीकार करती है। इन दोनों के संबंध के बारे में श्रोत्रिय लिखते हैं- "अट्टू साव ओर गुइयाँ भौजी का स्नेह प्रसंग मार्मिकता के शिखर को स्पर्श करता है तथा अत्यंत विलक्षण प्रसंग है।"[6] इस प्रकार जाति के बंधन यौन भावना के सामने टूट जाते हैं और जातीय–अंतर्जातीय संबंधों को दृढता प्रदान करते हैं।

3.1.2 जातीय एवं धार्मिक भेदभाव :–

'डूब' में सामंती वर्ग, ब्राह्मण वर्ग और सर्वहारा वर्ग का चित्रण किया गया है। सामंती वर्ग और ब्राह्मण वर्ग की मिली भगत से सर्वहारा वर्ग के शोषण को लेखक मार्मिकता से स्पष्ट किया है। सर्वहारा वर्ग में चमार, लोहार, हलवाहें आदि आते हैं। सामंती वर्ग और ब्राह्मण वर्ग की दुत्कार सहने के लिए अभिशप्त है। खेतों में शुरूवाती सब काम इन से लिए जाते हैं लेकिन फसल काँटने का काम इनसे लिया नहीं जाता क्योंकि अछूतों के स्पर्श से अनाज भ्रष्ट होने का डर रहता है। "चारा काटने का काम छोटे किसान, जिसके पास थोडेसे खेत है, वे तो खुद ही कर लेते हैं, मगर बानियों का, बामनों का और ठाकुरों का चारा काटने का काम करते हैं धरू हलवाहे और छोटे जाति के वे लोग जिनके खेत–खलिहान नहीं है और जिनसे खेती-किसानी का शुरूआती काम तो लिया जाता है मगर फसल नहीं कटवाई जाती।"[7]

'डूब' उपन्यास में चित्रित लडैई गाँव में धार्मिकता के बंधन कडे हैं। तभी तो आजादी के बाद हुए विभाजन से भडकी सांप्रदायिकता के आग से लडैई गाँव को भी जुलसा दिया। हिंदू–मुस्लिम द्वेष ने लडैई गाँव के दो–तीन मुस्लिमों के घरों को तबाह कर डाला हैं। मुस्लिमों के रहते आजादी का कोई मतलब नहीं इस विचार ने मुस्लिमों को गाँववालों ने मार डाला। मरते–मरते मुस्लिमों ने भी उनके निकटतम पडोसी रघु साव के घर को तबाह करके रघुसाव के बहुओं को मार डाला। "गाँव में मारे गए सभी मुसलमानों के शव पुरे धार्मिक अनुष्ठान और रीति-नीति के साथ दूर जंगल में गड्डे खोदकर गाड दिए गए और उनपर बडे–बडे पत्थर रख दिये गये जो आज 'मुसलमानी पथरा' के नाम से जाने जाते हैं।"[8]

मोती साव को 'मुसलमानी पथरा' की पूजा करने और वहाँ पत्थर चढ़ाने के कारण बिरादरी से बाहर किया जाता है। मोती साव ने अपना पक्ष रखने का बहुत

प्रयत्न किया लेकिन धर्मांध लोगों ने उनकी एक नहीं सुनी - "लेकिन हमें इससे कोई सरोकार नहीं मोती। हमने तो यह तय किया है कि अब हम तुम्हें दिगंबर जैन नहीं मानेंगे।"[9]

इसप्रकार 'डूब' उपन्यास में जातिगत भेद और धार्मिक विवाद का अंशिक वर्णन किया गया है।

3.1.3 किसान–मजदूरों का शोषण :–

'डूब' में किसान और मजदूरों की शोषण गाथा है। किसान और मजदूर तो पहले से ही पूँजीवादी व्यवस्था के दमन चक्र में फँस गए है। सामंती वर्ग द्वारा किए गए शोषण का वर्णन 'डूब' में बारीकी से किया गया है। सामंती वर्ग इन से मेहनत तो पूरी लेना चाहते हैं मगर मेहनत की किमत देते हुए उनका हाथ अखड जाता है। किसान–मजदूरों की मजदूरी देने से वे साफ इन्कार करते हैं। "बानियों का चारा काँटने की जो मजूरी मिलती है, वह ठाकुरों से नहीं मिलती। खास कर ठाकुर देवीसिंह तो मजूरी देते ही नहीं।"[10] फिर भी अगर मजदूरों की गिड–गिडाहट पर यदि मजदूरी दी जाती है वह भी अन्याय से ही। "कहने को तो सब कहीं यही मजूरी है पर मजूर को अनाज के नामपर मिलता है कुड़ा-करकट। वह भी तौल में सेर की जगह आधा से तीनपाव और चारे का गट्ठर बाँधते समय मालिक की ना–नुकर के चलते सिर पर ढोने लायक गट्ठर की जगह पाता है वह काँख में दबाने लायक चारा।"[11]

इस अन्याय के खिलाफ अगर आवाज उठाने की कोशिश की जाए तो घूमा के भाई को और बिरादरीवालों को मार–मारकर उस आवाज को दबाया जाता है। ठाकुर देवीसिंह घूमा चमार के भाई की संघर्षशील आवाज को दबाने के लिए उसे जानवरों से भी बदतर पीटते हैं –"ठाकुर टपरा में घुसे और सकुशल निकल भी आए। इस बीच टपरा के बाहर तक आई माँसहीन हाडों पर तडातड बजती ठाकुर की आवाजें और टपरा में मौजूद कृश काया के चीखने–चिल्लाने, रोन–गिडगिडाने की आवाजें, जिन्हें सुननेवाला वहाँ एक मात्र व्यक्ति था खुद ठाकुर देवीसिंह या फिर थे पेड़ोंपर बैठे चील–परेवा।"[12]

इस प्रकार सामंती वर्ग द्वारा सर्वहारा वर्ग के प्रतीक किसान और मजदूर के शोषण का सूक्ष्म चित्र लेखक ने खिंचा है। इस को स्पष्ट करते हुए प्रो.मंगेश नेहे

'मयंक' कहते हैं कि-"जब ग्रामीण अँचल के निश्छल, सरल एवं सहज ग्रामीणों के जीवन का कडवा सच उनकी शोषण गाथा बनकर किसी सधी हुई लेखनी के माध्यम से कैनवास पर उतरता है तो 'डूब' जैसी कृति का जन्म होता हैं।"[13] लेखक ने पूरी संवेदना और सूक्ष्मता के साथ किसान-मजदूरों के शोषण को स्पष्ट किया है।

3.1.4 ग्रामीण राजनीति और सामंती वर्ग के हथकंडें :-

'डूब' उपन्यास में वीरेंद्र जैन ने ग्रामीण राजनीति और सामंती वर्ग के एकाधिकारी वर्चस्व को स्पष्ट किया है। ग्रामीण जनता को इतना भी पता नहीं कि वे अब केवल अँग्रेजी हुकूमत से ही नहीं बल्कि उनकी रियासत की रानी के वर्चस्व से भी मुक्त हो गए हैं। ग्रामीण जनता राजनीति को सामाजिक प्रतिष्ठा का केंद्र मानती हैं। सामंती वर्ग गाँव की जनता के भोलेपन का बखूबी फायदा उठाते हैं। राजनेताओं को केवल वोटों से सरोकार हैं इसलिए तो रानी पाँच साल में एक बार सिर्फ वोट माँगने आती है। हीरासाव, निर्मलसाव जैसे लोग राजनीति को काला धन कमाने की मशिन मानते हैं। इस संदर्भ में डॉ. गोपाल राय साव बिरादरी की गिद्ध मानसिकता को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-"राजनीतिक नेताओं को अपना वोट-बैंक बनाने की चिंता होती हैं, ऊँचे स्तर के पदाधिकारियों को अपनी कारगुजारी दिखाने की धुन होती है और गाँव-कस्बें के साहूकार नीचले स्तर के कर्मचारियों से मिलकर ग्रामीणों को मिले मुआवजे की रकम पर गिद्धों की तरह टूट पडते हैं।"[14]

'डूब' उपन्यास में वीरेंद्र जैन ने प्रादेशिक स्तर से लेकर 'राष्ट्रीय' स्तर की राजनीति को पेश करके उसके घिनौने रूप का पर्दापाश किया है। ब्राह्मण महाराज अपने बटे के कलंक से बचने के लिए सरपंच चुनाव में खडे होकर चंद्रभान अहीर को गाँव से निष्कासित करते हैं। तो ठाकुर देवीसिंह चुनाव-मैदान में केवल इसलिए खडे हो रहे हैं कि दूसरों के सामने झुकना न पडे। ठाकुर देवीसिंह राजनीति से स्व-हित तथा गाँवपर वर्चस्व प्रस्थापित करने की महत्त्वाकाँक्षा रखता है। गाँव विकास के बार में उन्हें कोई सरोकार नहीं। "चुनावों से पहले ही चुनाव-प्रपंच को ज्यों-ज्यों वे जानते गये, त्यों-त्यों उनकी महत्त्वाकाँक्षाएँ बढती जा रही थी।"[15]

केवल वोट की आस में आनेवाली रानी काँग्रेस पार्टी से जनसंघ में जाती हुई कहती हैं - "कांगरेस आलसी है, झुठी है। अपने कहे पर टिकी नहीं रहती।

इसका यही फरेबपन देखकर हमने उससे नाता तोड लिया है। अब हम जनसंघ में आ गए हैं। अब ये बाँध जरूर बनेगा और गाँव भी नहीं डूबेगा। सो तुम हमें वोट जरूर देना।"[16]

रानी गाँव को विकास का झूठा सपना दिखाकर उनके वोट हाथियाना चाहती है। लेकिन अपना काम निकल जाने के बाद राजनेता गाँव और गाँव विकास को भूल आते हैं - "चुनाव जीता नहीं, सपना पूरा हुआ नहीं, नींद खुली नहीं, असल रूप में सज–धजकर बाहर आई नहीं कि हम सपने में दीखे लोग मीठे सपने को सच में बदलने में काम आये लोगों को यों बिसूर देती है, जैसे बिसूर देते हैं लोग सपनों को।"[17]

गाँव के सामंती वर्ग के प्रतिनिधि साहूकार राजनीति के द्वारा ग्रामीणों को मिले मुआवजे की रकम हडपना चाहते हैं। हीरा साव और निर्मल साव गाँव की जनता की नीरीहता का फायदा उठाते हैं। गाँववालों की जमीनों को हडपना, मुआवजे में मिले रूपयों में से अपना कर्जा चुका लेना और बचे हुये रूपयों को बैंक में साझा-खाते के रूप में अपने एकाधिकार में रखना चाहते हैं। हीरासाव गाँव छोडकर जानेवाले पानीपुरावासियों की जमीन खरीदकर उन्हें शरणार्थी बनाते हैं। हीरासाव अपने स्वार्थी हेतु स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि -"देखों भाई इस सरकार का तो भरोसा नहीं कि वह कब उजाडेगी ये गाँव। सो महारी सलाह तो यह है कि तुम अपने खेत–खलियान हमें बेच दो।"[18] इसप्रकार हीरासाव सरकारी कर्मचारियों से हाथ मिलाकर गाँववालों की जमीनों, मुआवजे की रकम और जमीन पर उगी फसल को भी हाथिया लेता है। लेखक ने भ्रष्ट राजनीति का प्रादेशिक–राष्ट्रीय रूप पाठकों के सम्मुख रखकर ग्रामीण विकास के सपनों के डूबने की ओर संकेत किया हैं। साथ ही ग्रामाँचलिक राजनीति के पतन का यथार्थवादी वर्णन किया है।

3.1.5 भ्रष्ट सरकारी नीति :–

'डूब' उपन्यास के प्रारंभ से लेकर अंत तक भ्रष्ट सरकारी नीति के दर्शन होते हैं। विकास के नाम पर गाँव को उजाडने में ये सरकारी नीति शुरू से लेकर अंत तक कार्य करती है। बिना किसी पूर्व सूचना के 'राजघाट बाँध योजना' की घोषणा और फिर लोगों का मुआवजे और विस्थापित करने के झूठे आश्वासन से गाँव को उजाडा जाता है। मुआवजे की रकम सही हाथों में गयी अथवा नहीं यह देखना सरकार

अपना कर्तव्य नहीं मानती। इसी कारण साहूकार पूरी तरह गाँववालों को लुटते हैं। गाँववालों के विस्थापन की कोई योजना सरकार के पास नहीं हैं। मुआवजे की पूरी रकम देने में सरकार असमर्थ है। अतः गाँववाले दर–दर की ठोकरे खाने को मजबूर हैं –"कैसी अँधेरनगरी और कैसा चौपट राज आया है यह। जिन सरकारी मुलाजिमों का काम सरकार की हिफाजत करना, जनता की सेवा करना होना चाहिए, वही सरकार के पाँव कुतर रहे हैं।"[19]

हीरा साव हडपी हुई जमीन अपने नाम करवाने के लिए गाँव के लोगों को बहला-फूँसलाकर जबरदस्ती नसबंदी करवाते हैं जिससे उनका भी काम होता है और सरकारी कर्मचारी भी अतिरिक्त बोनस प्राप्त करता है। बिना रिश्वत के कर्मचारी कोई काम करना नहीं चाहते –"देखिए हीरा सेठ, आजकल देश में आपात काल चल रहा है। ऐसे में हम घूस लेकर कुछ करने से रहे। किसी ने हमारी शिकायत कर दी तो बिना सुनवाई पत्ता साफ। और यहाँ के मुलाजिम बिना घूस लिए कुछ कर जाएँ, यह सोचना भी ख्वाब।"[20] राजघाट के टीले का ढह जाना, पंचमनगर पानी में डूब जाना यह सरकारी भ्रष्ट नीति के ही नतीजे हैं। सरकार आकाशवाणी पर इस घटना के संबंध में झूठा बयान देती है कि इंजीनियरों के कहने पर गाँव को पहले से ही खाली कराया गया था। लेकिन सच बात तो यह थी कि इस डूब में बहुत से लोग, पशु तथा संपत्ति बह गयी थी। इसलिए अक्षत मोहन उपन्यास के अंत के बारे में अपनी टिप्पणी को व्यंग्य का स्वर देते हुए कहते हैं कि "'डूब' का अंत बहुत प्रभावकारी है जो सरकारी तंत्र के ढोल की पोल खोलता है। काश, झूठी खबर सुनकर जो ट्राँजिस्टर माते ने तोड़कर पानी में फेंका, उसी तरह यदि हम दोहरी मानसिकता को भी मन से उतार कर फेंक दे तो सही अर्थों में स्वस्थ्य समाज का निर्माण हो सकेगा जिस में अन्याय के विरूद्ध जद्दोजहद करने की हम में ताकत होगी।"[21]

'राजघाट बाँध परियोजना' का अधूरा कार्य, बिना किसी पूर्व सूचना के गाँवों को विस्थापित करना, मुआवजे की रकम देने में असमर्थता, सरकारी मुलाजिमों की रिश्वत-खोरी, बाँध का टीला ढह जाना, विस्थापन की झूठी खबर और अंत में परियोजना को बदल कर अभयारण्य बनाने की घोषणा आदि घटनाएँ भ्रष्ट सरकारी नीति की ओर हमारा ध्यान केंद्रित करती है।

3.1.6 मार्क्सवादी-गांधीवादी विचारधारा के समान जातीय एकात्मता पर बल :-

'डूब' उपन्यास में एक ओर जातीय भेदा-भेद है, तो दूसरी ओर जाति उन्मूलन का प्रयत्न भी किया गया है। 'डूब' उपन्यास के पात्र माते इमरतसिंह अपनी सौ वर्षों की लम्बी जीवन कहानी में अच्छे-बुरे प्रसंगों को दोहराते हुए उपन्यास के अंत तक प्रवास करते हैं। माते शलाका पुरूष है। माते सबसे भिन्न मानवता का प्रतीक और गांधीवादी चरित्र है। वे जातीय एकात्मता पर बल देते हैं, इसलिए राम दुलारे की जाति पूछने पर वे चिल्लाते हैं -"वह ब्राह्मण के वीर्य से जनमा, अहरिन ने उसको सेया, लुहारिन ने दूध पिलाया, सलैया ने अपनी बाखर में शरण दी, बानिया ने परवरिश की और अब ठकुराइन ने उसे अपना ठाकुर चुना। अब बता, वह कौन जात का ? बता कि इस में से कौन जात के नहीं हुए तेरे-मेरे भगवान।"[22]

अट्टू साव और रामदूलारे भी जातीय एकता पर बल देते हैं। अट्टू साव जातीय एकता और जनतांत्रिक व्यवस्था की महत्ता को बताते हुए कहते है कि - "अब इस देश में न कोई ऊँची जाति का है, न नीची जाति का। बिरादरियाँ समाप्त। सब एक बराबर हैं अब सबको पढ़ने का हक, सबको वोट देने का हक। सबको एक ही अस्पताल से दवा-दारू, पाने का हक। सबको मंदिर जाने का हक। सबको एक ही कुएँ से पानी लेने का हक।"[23]

रामदुलारे इस जातिगत संकीर्णता को तोडने के लिए आंदोलन की भूमिका अपनाता है। घूमा हो या तुलसी नाई अब अपने हकों, अधिकारों को पहचान रहे हैं और सामंतीवादी शोषण-व्यवस्था के खिलाफ आंदोलन करते हैं-"तुलसी तो तुलसी, किसी भी खवास ने दाढी नहीं छोली सुरेश साव की। न सुरेश साव की, न किसी और साव की। ब्याह हुए बारातें आई बारातें गई। राक्षस-सी मूँछ, मुल्ला-सी दाढी बढाये यहाँ-वहाँ, लुका-छिपी-सी करते फिरे बनिया।"[24] चमार, नााई, बसोर जाति ने आंदोलन कर के अपने अस्तित्त्व के महत्त्व को दर्शाया तब जाकर सामंती लोगों ने उनसे माफी माँगी।

इस प्रकार माते, अट्टू साव और राम दुलारे मार्क्सवादी और गांधीवादी विचारों से प्रभावित जान पडते हैं जिन्होंने जातीय एकात्मता पर बल दिया है।

3.1.7 विस्थापन और विस्थापितों की शोषण गाथा 'डूब':–

'डूब' उपन्यास के मूल में विस्थापन की पीड़ा है। स्वाधीनता के बाद पंचवर्षीय विकास योजनाओं के तहत देश विकास के नाम पर आयी विभिन्न परियोजनाओं ने बरसों से खुशहाली से बसे गाँवों को उजाडने का कार्य किया है। सरकार मध्यप्रदेश की 'बेताव नदी' पर 'राजघाट बाँध परियोजना' की घोषणा करके बिजली उत्पादन का निर्माण करना चाहती थी। सिंचाई और विद्युत उत्पादन की परियोजनाओं के तहत विस्थापित होनेवाले पहाडी ग्रामीणों की शोषण गाथा है 'डूब'। इस उपन्यास की सही समीक्षा करते हुये राम शरण जोशी लिखते हैं- "'डूब' एशियाई कृषक समाज की गतिहीनता, शक्ति हीनता, आत्मग्रस्तता, बहु आयामी उत्पीड़न सहित विभिन्न प्रकार की पेचीदगियों का प्रतिनिधित्व करता है।"[25]

चंद शहरों के विकास और आराम के लिए हाजारों गाँव को उजाड किया जाता है। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी गाँव में आकर पहली ईंट लगाकर गाँवों को विकास का सपना दिखाती है लेकिन गाँववालों का मोहभंग होता है "इंदिरा जी एक ईंट रख गई थी, कि फेंक गई थी, राम जाने, मगर उस एक ईंट से बेतवा में जो उफान आया वह जाने कितने गाँव के गाँव लील गया।"[26]

बिना किसी पूर्व योजना के गाँव खाली करने का आदेश दिया जाता है। मुआवजा और बदले में विस्थापन करने के वादे पर सरकार खरी उतरती नहीं। सरकार के पास विस्थापितों के मुआवजे की रकम देने के लिए रूपये नहीं है, जमीन देने में वह असमर्थ है –"हमारे पास जगह नहीं है तुम्हें बसाने की। हाँ, चाहो तो दो हजार के बदले ललितपुर में रेलवे पटरी के इस तरफ बीस गज जमीन हम दे सकते हैं।"[27] जिंदगीभर मेहनत से बनाये खेत–खलिहान छोडकर दर–दर की ठोकरे खाने के लिए वह मजबूर है। शहरों के विकास के लिए गाँवों को आभाहीन बनाया जा रहा है। श्री. राम भरोसे कहते हैं- "'डूब' एक यथार्थवादी उपन्यास है, जिस में लेखक ने भारतीय ग्रामों के शोषण तंत्र को बेनकाब किया है। लेखक ने विस्थापन की पीड़ा और पर्यावरण के विनाश की चिंता को बारीक संवेदनों मे गूँथकर कथा रूप में प्रस्तुत किया हैं।"[28]

मुआवजे के रुप में मिली रकम को भी सरकारी मुलाजिम और गाँव के साहूकार मिलीभगत से लूट लेते हैं। लोगों की इस योजना से बहुत–सी उम्मीदें जूडी

हैं कि यह योजना पूरी होकर उनका विकास करेगी किंतु अंत में इस योजना ते तहत पूरे किए गए राजघाट बांध का एक टीला ढह जाता है और पंचमनगर को जल-समाधी मिलती है। मास्साव जो शिक्षा का प्रसार करना चाहते हैं उनके स्कुल का भी विस्थापन किया जाता है और उनका तबादला हो जाता है। गाँव आज भी इस आस में है कि उन्हें न्याय मिलेगा। वीरेंद्र जैन विस्थापित गाँवों की दीन-दशा का यथार्थवादी वर्णन करते है- "विकास के नामपर धन आखिर जा किन की जेबों में रहा हैं ? इन्हें तो इन्हीं के धन का छोटा–सा हिस्सा वापस मिल पा रहा है। वह भी कब ? जब वे उसे भोगने के योग्य न रहें तब।"[29]

अंत में सरकार योजना बदल कर अभयारण्य बनाना चाहती है। पर्यटन का विकास हो इसलिए अनेक गाँव आरक्षित रखे जाते हैं। गाँव, गाँव की जनता के विकास की सरकार को कोई चिंता नहीं। मुआवजा मिला कि नहीं, वह सही हाथों में गया अथवा नहीं, विस्थापित लोगों का ठिक तरीके से विस्थापन हुआ अथवा नहीं ये देखना सरकार जरूरी नहीं समझती। गाँव से ज्यादा उन्हें पर्यटकों की फिक्र है, जंगली जानवरों की फिक्र है। अरविंद से अभयारण्य बनने की बात सुनकर माते चिल्ला उठते है –"यह हम क्या सुन रहे हैं महाराज। कोई समझाता क्यों नहीं इस सरकार को ? आदमियों की किमत पर जानवरों की रक्षा करना चाहती है यह। गरीबों के जीवन की बलि लेकर अमीरों की तफरीह का बंदोबस्त करना चाहती है यह सरकार ? और कोई इसका हाथ पकडनेवाला नहीं बचा ? कोई नहीं कोई भी नहीं ?"[30] अंत तक गाँव के लोग मुक्ति के लिए छटपटाते हैं।

ग्रामीण-विकास के नामपर हो रहा ग्रामीणों का शोषण, विस्थापन की विद्‌ग्धता उन्हें अंदर से आहत कर रही है। माते का अंतिम क्रोध उनकी छटपटाहट को व्यक्त करता है। लेखक ने 'डूब' में बडे बखूबी, साहस और बेबाकी से सरकारी नीति के ढोल की पोल खोलने का कार्य किया है।

3.1.8 'डूब' की भाषा तथा उद्‌देश्य :–

'डूब' बुँदेल खंडी मिश्रित हिंदी भाषा में लिखा गया बेजोड उपन्यास है। बुँदेल खंड की बोली भाषा कहीं पर भी हिंदी पर हावी नहीं होती। सर्जनात्मकता की दृष्टि से भाषा सजीव लगती है। सत्यमोहन वर्मा 'डूब' की भाषा की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं –"उपन्यास की सबसे बडी विशेषता उस सामग्री की स्पष्ट समझ है जिस

पर कथानक का कलेवर सजा हुआ है और वह भाषा है जिसमें अभिव्यक्त होकर कथा प्रवाहित होती है। आँचलिकता से सरोबार भाषा की दृष्टि से यह एक अनुपम कृति है। सफल उपन्यास की जो शर्ते होती हैं। उस कसौटी पर 'डूब' खरा उतरता है।"[31] भाषा की रोचकता पाठकों को पूरा उपन्यास पढने के लिए प्रवृत्ति करती है।

'डूब' के माध्यम से वीरेंद्र जैन मध्य भारत के उन तमाम गाँवों के शोषण गाथा को स्पष्ट करना चाहते हैं जो मुक्ति के लिए, विकास के लिए छटपटा रहे हैं। लेखक यह भी कहना चाहता है कि नई पीढ़ी डूब–क्षेत्र के शोषित और असहाय ग्रामीणों का नेतृत्व करेगी। सरकार तथा साहूकारों के शोषण से उन्हें मुक्ति दिलायेगी। लेखक इस उद्देश्य पूर्ति पर खरा उतरता है। मनोहरलाल इस विषय में कहते हैं –"समाज, शासन, धर्म, संस्कृति, व्यवस्था के दोहरे आचरण को उजागर करना, विरोधाभासों को उघाड़ना, आतंक और आतताइयों की पहचान करवाना, शोषितों और भरमाये गए लोगों, समुहों के भयातुर मौन को शब्द देना वीरेंद्र जैन अपने लेखन का उद्देश्य मानते हैं।"[32] 'डूब' में इस उद्देश्य की पूर्ति में उन्हें सफलता मिली हैं।

'डूब' के कमजोर पक्ष पर यदि प्रकाश डाला जाए तो लेखक रामदुलारे के चरित्र पर हावी हो जाते हैं। कहीं–कहीं यह अभास होता है कि रामदुलारे के माध्यम से खुद लेखक बोल रहा है। उसका लेखक बनना, पुरस्कार पाना लेखक के जीवन से संबंध रखता है। 'मास्साव' के गाँव छोडकर जाते समय अनेकासिंह द्वारा बारह-मासा का वर्णन नीरसता और रोचकता में बाधा पहुँचाता है। लेखक पूरे उपन्यास में एक भी ठोस महिला चरित्र उभार नहीं पाये हैं। इस विषय में श्रीमती सुसंस्कृति परिहार लिखती है "लेखक ने मेधा पाटकर की तरह 'डूब' के विस्थापितों की संघर्ष प्रवक्ता बनी किसी महिला पात्र को उभार कर उजागर नहीं किया, यह इसकी कमजोरी है।"[33] लेकिन 'डूब' के मूल उद्देश्य के पूर्ति में यह कमजोरियाँ छिप जाती हैं।

अतः 'डूब' 20 वीं सदी के अंतिम दशक की एक बेजोड कृति है, जो विकास के नामपर विस्थापित गाँवों के शोषण तथा उनकी मुक्ति के लिए छटपटाहट को संवेदना के साथ स्पष्ट करती हैं।

* **निष्कर्ष :–**

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि 'डूब' सन् 1991 में प्रकाशित वीरेंद्र जैन का एक सशक्त उपन्यास है जो विकास प्रक्रिया के तले दबे ग्रामीण जनता के शोषण गाथा को व्यक्त करता है। विकास के नामपर विस्थापित लोगों के दु:ख–दर्द को लेखक ने संवेदना के साथ स्पष्ट किया है। आजादी के पश्चात् विकास के नामपर बनी सिंचाई ओर विद्युत परियोजना के कारण हाजारों बरसों से बसे गाँवों को विस्थापन के नामपर उजाडा जा रहा है। भ्रष्ट सरकारी नीति, साहूकारों द्वारा किया गया शोषण, सरकारी मुलाजिमों और सामंती वर्ग के मिली भगत से भोली ग्रामीण जनता के खेत–खलिहान तथा मुआवजे की रकम को भी हाथिया लिया जाता है। जातीय भेदा–भेद, धार्मिक भेदों के बावजूद समान जातीय एकात्मता पर बल दिया गया है। किसान–मजदूरों का शोषण और शोषण के विरूद्ध में जागी आंदोलन की भावना लोगों को अपने अधिकार के प्रति सचेत करती है। शैली और भाषा की दृष्टि से यह एक बेजोड कृति है। गाँव का राजनीतिक पतन, प्रशासन की भ्रष्ट–नीति और धर्म–व्यवस्था की संकीर्णता सभी मिलकर किस तहर गाँव का जीवन–रस सोख रहे हैं, इसकी कहानी है 'डूब'। इस दमनकारी व्यवस्था ने सब गाँवों को डूबा दिया है जो शीर्षक की सार्थकता का सच्चा प्रमाण है।

3.2. मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम'(1994), उपन्यास का विवेचनात्मक विश्लेषण :–

20 वीं सदी के अंतिम दशक में महिला उपन्यासकारों में मैत्रेयी का नाम शीर्षस्थ है। आज मैत्रेयी पुष्पा हिंदी साहित्याकाश का एक जग–मगाता सितारा है। 'इदन्नमम' मैत्रेयी का रचनाक्रम की दृष्टि से तीसरा उपन्यास है, जो अन्य उपन्यासों की तुलना में सशक्त एवं पुरस्कर प्राप्त है। सन् 1994 में प्रकाशित 'इदन्नमम' चारसौ पृष्ठों का बृहत् उपन्यास है, जो छब्बीस खंडों में विभाजित है। बुँदेलखंड के ग्रामीण परिवेश, पहाडी ग्राँमांचल से जुडा यह उपन्यास वहाँ की सामाजिक व्यवस्था, ग्रामीण–पहाडी जन–जातियों का भोलापन, शहरों में हुए दंगों से प्रभावित ग्राम्य–जीवन की विद्ग्धता आदि का यथार्थ चित्रण 'इदन्नमम' में मिलता है।

मैत्रेयी पुष्पा ने 'इदन्नमम' में ग्रामीण एवं पहाडी अँचलों का चित्रात्मक वर्णन किया है, जिस के कारण वह रेणु–परंपरा की सफल अनुयायी ठहर सकती है। 'इदन्नमम' के आँचलिक वर्णन से प्रभावित राजेंद्र यादव लिखते हैं –"मिट्टी पत्थर के

ढोकों या उलझी डालियों और खुरदुरी छाल के आसपास की सावधान छँटाई करके सजीव आकृतियाँ उकेर लेने की अद्‌भूत निगाह है, मैत्रेयी के पास–लगभग 'रेणु' की याद दिलाती हुई।"[34] मैत्रेयी ने 'इदन्नमम' उपन्यास में ग्रामीण–पहाडियों में बसे अँचलों की यातनाओं, उनके शोषण, वोटों की राजनीति विकास के नामपर गाँवों की लूट, सांप्रदायिकता की त्रासदी, नारी शोषण और इसके खिलाफ आंदोलन की भावना आदि को वाणी देने के लिए 'मंदा' जैसा एक सशक्त नारी पात्र का निर्माण किया है, जो इन भोले–भाले ग्रामीणों को शोषण से मुक्त करना चाहती है।

अतः उपन्यास के इन्हीं महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को केंद्र में रखकर 'इदन्नमम' का विवेचनात्मक विश्लेषण करने का प्रयास प्रस्तुत लघुशोध-प्रबंध में किया है।

3.2.1. नई और पुरानी पीढ़ी का संघर्ष :–

'इदन्नमम' उपन्यास में लेखिका ने बऊ, प्रैम और मंदा इन तीन पीढ़ियों के माध्यम से नई और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष उनके वैचारिक मतभेद आदि को दिखाने का सफल प्रयास किया है। बऊ रूढीग्रस्त, परंपरावादी है लेकिन उसकी बहू परंपराओं की मर्यादा को तोड़कर नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है। अपने पति महेंदर की मृत्यु के बाद वह कुछ दिन आँसू बहाती है, लेकिन पूरी जिंदगी आँसुओं के सहारे काँटना नहीं चाहती। प्रैम; बऊ का प्रतिरोध करके वैधव्य जीवन का परित्याग करके साज-शृंगार करती है। बहू के इस बरताव से बऊ का का खून खौल उठता हैं, क्योंकि बऊ चाहती है उसकी बहू भी आजीवन मर्यादा में रहे, परंपरा का पालन करे। बऊ ने भी ताउम्र इन्ही मर्यादा-परंपराओं का पालन किया है। अपने जीवन को रूढ़ियों–परंपरा के हवन–कुंड में स्वाहा किया है। लेकिन प्रैम इस रूढ़ीग्रस्तता का शिकार नहीं बनना चाहती और वह रतनसिंह यादव के साथ भाग जाती है, नयी राह; नयी जिंदगी की तलाश में। अपने बहू के इस व्यवहार पर बऊ गुस्सा प्रकट करती है। वह उसे अब कभी अपने घर की दहलीज पर कदम रखने नहीं देना चाहती। प्रैम अपनी बेटी मंदा को पाने के लिए बऊ को कानूनन नोटिस भेजती है, जिससे बऊ का खून–खौल उठता है, और वह भी प्रैम से कानूनी लड़ाई लढ़कर प्रत्युत्तर देना चाहती है। वह कहती है-"लड़ने दो। अब वह हमारी बहू किस बात की ? हमारे महेन्दर की दुल्हन मर गयी हमारे लिए। खतम। जब वाने मन्दा के बाप की आन नहीं राखी तो मंदा की मतारी

बनने का भी क्या हक्क ?।"[35] प्रैम और बऊ आजीवन विचारों के मतभेद के कारण लढ़ते रहते हैं।

मंदा उस पीढ़ी का कर्तव्य निभाती है जिसमें दो पीढ़ियों का मिलन हो। वह बऊ और प्रैम के वैचारिक वैषम्य की खाईयों के बीच सामंजस्य के सेतु का काम करती है। वह बऊ को पौराणिक कथाओं का संदर्भ देकर मनुष्य के खोखले आदर्शों, रूढ़ी-ग्रस्तता, परंपरावादीता होने की पोल खोलती है। वह बऊ को भी छोडना नहीं चाहती और प्रैम का पक्ष भी लेना चाहती है। 'इदन्नमम' उपन्यास के भूमिका में राजेंद्र यादव लिखते हैं –"बऊ (दादी), प्रैम (माँ) और मंदा.....तीन पीढ़ीयों की यह बेहद सहज कहानी तीनों को समानान्तर भी रखती है और एक दूसरे के विरूद्ध भी।"[36] अतः स्पष्ट है कि मैत्रेयी ने 'इदन्नमम' उपन्यास में बऊ, प्रैम और मंदा के जरिये नई और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष को सहजता से दिखाया है।

3.2.2 स्त्री–पुरूष अवैध यौन–संबंध :–

ग्रामांचलों में स्थापित यौन–संबंधों की छवि हमें 'इदन्नमम' में देखने को मिलती है। 'इदन्नमम' में यौन-भावना से ग्रस्त अनेक पात्रों में अवैध यौन–संबंध का चित्रण आया है। मंदा और मकरंद आपस में प्यार करते हैं। इसी प्यार में वश होकर वह मंदा के लिए एक दिन रिबन, रंगीन पिन और नेलपॉलिश लाता है। मंदा बऊ के कहने कारण मकरंद को इन चिजों की किमत देने जाती है, तो मकरंद उसे अँधेरे में बाखर में ले जाता है और उसका हाथ पकडता है। जिसका वर्णन करते हुए लेखिका लिखती है –"एकाएक मकरंद ने अपनी बाँहों के घेरे में ले लिया उसे। वह चौंक गयी। कसमसाने लगी।"[37]

मंदा श्यामली गाँव को छोडकर अपने घर जाते समय मकरंद को मिलने मंदा जाती है। मकरंद मंदा के जाने की बात से तिलमिला उठता हैं। मंदा विदा होते समय मकरंद से मिलने के लिए जाती है, तो मकरंद उसे बाहों में खिंच लेता है – "गिरफ्त कसती चली गयी। मुख से मुख सट गया बोले, "अभी तो भगवान देख रहा है। साक्षी है हमारा।" ढीठ हो आये वे।"[38] अतः स्पष्ट है कि मंदा और मकरंद के बीच विवाहपूर्व ही अवैध यौन–संबंध थे।

इसके साथ ही उपन्यास में कुसुमा और अमरसिंह दाउजू के विवाहोपरांत अवैध यौन–संबंधों का चित्रण मिलता है। कुसमा यशपाल की ब्याहता पत्नी थी लेकिन गोविंदसिंह ने अपने बेटे यशपाल की दहेज की लालच में दूसरी शादी की थी। कुसुमा सारे सुखों से दूर ढोरों-सा जीवन व्यतीत करने के लिए अभिशप्त थी। सुख की तलाश में वह अपने चचेरे ससुर अमरसिंह दाउजू के साथ अवैध यौन–संबंध बनाती है। दाउजू भी अकेलेपन का शिकार थे। कुसुमा के नीरस जीवन में दाउजू शितल झरने की तहर बहने लगते हैं। मंदा को मिलने के लिए कुसुमा और अमरसिंह ओरछा गढ़ी में जाते हैं, तब एकांत में दोनों की रासलीला चलती है – "वे भाभी का हाथ अपने हाथ में लेकर कहतें हैं – "अब बोलों, क्या कह रही थी तुम ? और भाभी को चूम.....।"[39] कुसुमा भाभी दाउजू से नाजुक बेल की भाँति लिपट जाती है। कुसुमा–दाउजू शारीरिक क्षुधा के शमन के लिए अवैध–यौन संबंध बनाते हैं जो परिस्थिति की उपज हैं।

इसके साथ उपन्यास में अभिलाख सिंह–लीला राऊतिन, जगेसरा–अहिल्या राऊतिन, गनेसी द्ददा और अहिल्या की माँ तुलसिन आदि के रूप में अवैध यौन–संबंधों को दर्शाया गया हैं।

3.2.3 जातिवाद और सांप्रदायिकताः–

ग्रामांचलों में फैला जातीयवाद तथा शहरों से गाँवों की ओर बढनेवाली सांप्रदायिकता के चित्रण 'इदन्नमम' उपन्यास में मिलते हैं। 'इदन्नमम' उपन्यास के उन्नीसवें खंड में जातिवाद और उसके कारण भडके सांप्रदायिकता को दर्शाया गया है। 'मंडल कमिशन' की घोषणा के कारण दिल्ली–ग्वालियर में दंगें छिड जाते हैं। गाँव का बहरा वकील इसका गलत प्रचार करता है –"समझावे कि लो, अब बामन–बानियों के लड़कों–बच्चों को नहीं मिलेगी नौकरी–चाकरी अब तो सिरकार यादव, कुर्मी लोधों को देगी सर्वस। जैसे चमार–मैतरों को मिलती है।"[40] इससे श्यामली गाँव के लोग आपस में सुलग पडते हैं। खबरों की अफवाहों के कारण लोग एक-दूसरों को मारने के लिए उताडू हो जाते हैं। जाति–जाति के बीच तनाव निर्माण हो जाता है और हर एक बस्ती पर लोग लाठियाँ लेकर तैनात रहते हैं।

इसके बाद 'रथ-यात्रा' और 'बाबरी कांड' की खबरों से श्यामली गाँव में हिंदू–मुस्लिमों के बीच जंग छीड़ जाती है –"हल्ला मचा कि मसजिद ढहाई तो मुसलमानों ने हिंदुओं को मारा है, काटा है।"[41] इस अफवाह से लोग गाँव के मस्जिद

की तोड़–फोड़ करते हैं। चिफसाहब की बखरी को तो तहस–नहस कर देते हैं। इसी कौमी दंगों में बन्ने मास्साव का किसी ने खून कर दिया था। 'सांप्रदायिकता' की हीन मानसिकता के कारण श्यामली गाँव की एकता में दरारें पडती हैं।

अभिलाखसिंह भी जातीयवादी हीन मानसिकता के कारण पिछडी जातियों से हाड़तोड मेहनत लेता है। राऊतिने, आदिवासी भिल्ल, गोंड आदि जन–जातियाँ निम्न वर्ग के होने के कारण अभिलाख सिंह उन पर अमानवीय अत्याचार करता है जिसे सहने के लिए निम्न–वर्ग विवश हैं।

भृगुदेव को भी इस जातिवाद के कारण यातनाएँ सहन करनी पडती है। उसने सामान्य छात्रों के प्रतियोगिता में मेडिकल के लिए प्रवेश पाया था फिर भी उसे हरिजन होने के कारण संदेह की दृष्टि से देखते हैं –"असल में हरिजनों को देखते ही कॉलिज में और कॉलिज के बाहर लोग एक धारणा कायम कर लेते हैं कि निश्चित ही यह छात्र आरक्षण से आया है। .....और फिर होती अंदरूनी बैर की शुरूआत जिसमें उपेक्षा, ईर्ष्या, द्वेष ओर कुँठाएँ पनपने लगती है।"[42] इस यातनाओं के कारण संवेदनशील भृगुदेव कॉलेज छोड देता है और संन्यासी बनता है।

स्पष्ट है 'इदन्नमम' उपन्यास में 'मंडल कमिशन' और 'रथ–यात्रा' तथा 'बाबरी–कांड' घटनाओं द्वारा हीन जातीय संकीर्णता तथा उससे जूड़े 'सांप्रदायिकता' के घिनौने चेहरे को स्पष्ट किया है। भृगुदेव इसी जातिवादी मानसिकता का शिकार होकर कॉलेज छोडने के लिए अभिशप्त हैं।

3.2.4 किसान–मजदूरों का शोषण और आंदोलन की उद्‌भावना :–

'इदन्नमम' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने बुँदेलखंड के पहाडी अँचलों में बसे ग्रामीण और आदिम जन–जातियों के शोषण गाथा को प्रस्तुत किया है। ग्रामीण लोगों के भोलेपन और विवशता का फायदा उठाकर अभिलाख सिंह कवडियों के दाम में उनके खेत अपने नाम करवा लेता हैं। उन खेतों में स्टोन–क्रैशर मशिनें लगवाता है और पत्थर पिसवाकर पैसे कमाने के लिए मजदूरों को रात–दिन मेहनत करवाता है। अभिलाख सिंह गाँववालों को मजदूरी नहीं देना चाहता क्योंकि गाँववाले एक होकर उसके खिलाफ आंदोलन कर सकते हैं। इसलिए वह आदिवासी राऊत, गोंड जातियों के भोले–भाले लोगों से हाड़तोड मेहनत लेता है। उसने मजदूरों से ज्यादा–से–ज्यादा मेहनत लेने के लिए उन्हें शराब की लथ लगायी है। शराब देखते ही लोग पागल हो

जाते हैं। मंदा इसपर क्रोध व्यक्त करते हुए कहती है –"भइया जी, यह आदत किसने डाली? आपकी बिरादरी ने ही न? आदत नहीं डालते तो इनका शोषण कैसे करते ? खून कैसे चूँसते?।"[43] दिन–रात स्टोन-क्रैशरों पर काम करने से मजदूरों के फेफडों में मिट्टी जाने से वह बिमार पडते हैं। तालाब का गंदा पानी पीकर हैजे की बिमारी फैल जाती है। मजदूर बिमार पडते हैं, फिर भी अभिलाख सिंह उन्हें शराब पिलाकर उनसे काम करवा लेता हैं। कोई भी मजदूर अगर आंदोलन की या मंदा की बात सुनता है तो अभिलाख सिंह उन्हें धमकाता हैं –"यदि कोई राऊत उस लडकी के सिखाये–पढ़ाये पर कान देगा तो क्रैशर की मशीन में पीस दूँगा सालो।"[44] इतना ही नहीं अभिलाख सिंह मजदूरों का व्यापार भी करता है इसलिए गुबरैला कहता है –"मेहनत मजदूरी छोडो, खाना–पीना, भूलो पर इतेक भारी अतियाचार। हमारी जनी–मानसें बेंची जाने लगी हैं अब जिन्दे आदमियन का व्यौपार करने लगे हैं अभिलाख।"[45] अभिलाख सिंह मजदूरों को धमकाकर उनसे दिन–रात मेहनत करवाता है। उन्हें मजदूरी के नाम पर शराब पिलाता है, ताकि वे अपनी मति खो दे और ढोरों-सी मेहनत करते रहें।

लेकिन 'मंदा' के द्वारा मैत्रेयी ने इस शोषण तंत्र के खिलाफ आवाज उठायी है। मंदा लोगों से मिलकर उनके अधिकारों से उन्हें परिचित कराती हैं। वह द्वारिका कक्का से मिलकर अभिलाख सिंह और उन तमाम ठकेदारों से मजदूरी के लिए झगडा करती है। वह संकल्प करती है -"मुझे तो किसी सरकार से भी नहीं लडना किसी राजतंत्र का विरोध नहीं करना, चंद व्यापारियों के विरूद्ध ही तो आवाज उठानी है। वह भी वे, जो परदेशी है हमारी भूमिपर।"[46] इस संकल्प के कारण ही गाँव के लोग एक होकर अभिलाख सिंह के टपरियों, मशिनों को उद्ध्वस्त करते हैं। मंदा माँ से मिले रूपयों से दो ट्रैक्टर खरीदती है और सिंधी भइया के स्टोन-क्रैशर पर लगाती है, जिससे गाँव के कुछ लोगों को काम मिलता है। आंदोलन की तीव्रता ने मंदा की नींद उड गई है। हरघडी उसके मन में स्टोन-क्रैशरों के मालिकों से सामना करने युक्तियाँ उमड पडती है। वह इस आंदोलन के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहती है – "अमीर गरीब, शत्रु–मित्र सबको शामिल होना होगा इस यज्ञ में समय पडें तो समिधा–सामग्री भी बनना होगा। बात होम की है। बात आंदोलन की है।"[47] वह क्रैशरों के मालिकों से लड़कर किसान–मजदूरों को उनका हक दिलाती है।

अतः स्पष्ट है 'इदन्नमम' उपन्यास किसान से बने मजदूरों की शोषण गाथा है जिसमें भुलावा है, छल है, कपट है, शोषण है, हाड़तोड मेहनत है फिर भी आंदोलन की चिंगारी भी है जो 'मंदा' के रूप में अवतरित होती है जिसके ऊर्जा स्त्रोत है ओरछा के प्रधान टिकमसिंह।

3.2.5 ग्रामीण राजनीति का यथार्थ :–

'इदन्नमम' उपन्यास के द्वारा मैत्रेयी ने ग्रामीण राजनीति के सच्चे रूप को बेनकाब किया है। ग्रामीण जीवन में राजनीति की सोच केवल पद–प्रतिष्ठा तक सीमित पायी जाती है, गाँव के विकास से उनका कोई सरोकार नहीं होता। गाँव की राजनीति में आपसी रंजीशें होती है, जातिगत पार्टियाँ होती हैं। इसी आपसी रंजीश के कारण सोनपुरा के प्रधान महेन्दर को मार दिया जाता है। गाँव में बडा अस्पताल बनाने के लिए प्रयत्नरत महेन्दर की प्रतिष्ठा विरोधी पार्टी के आँखों को कचोटती है और अस्पताल के उद्घाटन के दिन दंगा छिड जाता है इस का वर्णन करती हुई लेखिका लिखती है "ऐन भगदड मची थी। कुचल–पिचल के दो बच्चा मर गए गोपालपुरा के दसई बसोर और पल्टू कोरी ने भी प्राण तज दिए। उन्हें गोली मारी और अंत में महेन्दर को गोली .....।"[48] महेन्दर सोनपुरा की गंदी राजनीति का शिकार हो जाता है, और अस्पताल बनाने उसका सपना अधूरा रह जाता है।

श्यामली गाँव में भी अनेक राजनीतिक पार्टियों का बोल बाला है। पहले प्रधान का चुनाव निरविरोध हो जाता था लेकिन अब प्रधान के चुनाव में हर एक गली का उम्मीदवार खडा हो रहा है। प्रधान का चुनाव अब व्यापार बन गया है - जैसे "सौ बातों की एक बात, अब पिरधानी भी ससुर व्यापार हो गयी है, जो ज्यादा से ज्यादा खरचकर सखे सो बन जाओ पिरधान और फिर काट लो उसका चौगुना कि दस पइसा।"[49] अब गाँव की राजनीति का गाँव के विकास से कोई सरोकार नहीं प्रधान बनकर रूपय कमाने के उद्योग बने हैं चुनाव।

सोनपुरा में भी राजासाहब केवल चुनावों के दिन आकर गाँव के विकास योजनाओं की बातें करते हैं। वोटों के बदले रूपये देकर उनके अधिकार को खरीद लेना चाहते हैं। चुनाव आते ही विविध योजनाओं का शुभारंभ किया जाता है और चुनाव के बाद गाँव और विकास योजनाओं को राजनेता भूल जाते हैं – "चुनाव गया रोशनी गयी। फिर किसी के ध्यान में नहीं चमका वह गाँव।"[50] नेता लोग गाँव के

लोगों को केवल वोट मात्र समझते हैं। राजनेताओं की इस स्वार्थी वृत्ति को सबक सिखाने के लिए सोनपुरा गाँव और उसके आस–पास के लोग चुनावों का बहिष्कार करते हैं। राजसाब चुनावों के दिन अस्पताल में डॉक्टर भेजते हैं और चुनावों पर बहिष्कार डालने के कारण डॉक्टर को फिर वाफिस बुलाते हैं। अतः स्पष्ट है मैत्रेयी ने 'इदन्नमम' उपन्यास में गाँव की राजनीति में पार्टियों की आपसी रंजिश, चुनावों का व्यापार, वोटों की राजनीति तथा स्वार्थ-लोलुप राजनेताओं के द्वारा ग्रामीण राजनीति के पतन का यथार्थ रूप स्पष्ट किया है।

3.3.6 विकास के नामपर विकृति :–

'इदन्नमम' उपन्यास में आजादी के पश्चात् विकास के नामपर गाँवो के विनाश को उजागर किया गया है। विकास अंदर से कितना खोखला है, इसका वर्णन किया गया है। मंदा सोनपुरा में गाँव की सुविधा के लिए अस्पताल शुरू करना चाहती है लेकिन बिना रिश्वत के उसका काम करने के लिए कोई तैयार नहीं। इस स्थिति पर व्यंग्य करते हुए एक ग्रामवासी कहता है –"अब आप लोग सोचे, गाँवों का कितना विकास किया है सरकार ने। लेकिन पेट नहीं भरता ग्रामीणों का। अल्लादीन का चिराग माँगते हैं, वह कहाँ से लाये कोई।"[51] लोग बीमारी के कारण तडपते हैं लेकिन उनके पास मरने के सिवा और दूसरा पर्याय नहीं।

कायलेवाले महाराज उर्फ टीकमसिंह भी विकास के नामपर गाँवों को उजाड ने का विरोध करते हैं। 'पारीछा थर्मल प्लॉन्ट' के तहत उ. प्रदेश और म. प्रदेश के सैकडों गाँवों की बिजली योजना का पैगाम लेकर सरकार गाँवों को विनाश की खाई में डूबा देती है। गाँवों को उजाड किया जाने लगा। महाराज मंदा को कहते है – "महापर्व ही था बिटिया, किसी के लिए विकास का महापर्व तो किसी के लिए विनाश का महापर्व।"[52] चंद शहरों के विकास के लिए, उनकी बिजली योजना के लिए सैकडों गाँव को उजाडा जाता है। गाँवों में अभी तक पक्के सडकों, यातायात के साधनों, चिकित्सालयों के अभाव के कारण गाँव दुर्गति में जीने के लिए अभिशप्त है।

मकरंद 'डोनेशन नीति' को उजागर करके शिक्षा क्षेत्र में फैले व्यापार को बेनकाब करता है। वह शिक्षा क्षेत्र की गीरती स्थिति को बताते हुए कहता है – "गाँव में एक तहर का शोषण–दोहन तो शहर में दूसरी तहर की पैंतरेबाजी। गिरना सब को है, क्योंकि गिराने में देश का समृद्ध तबका पूरी ताकत से जूटा है।"[53] अतः स्पष्ट है

कि अनेक विकास योजनाओं के कारण गाँव और गाँववालों को उजाडा जाता है। शिक्षा व्यवस्था में 'डोनेशन की विकृति' को दर्शाया गया है। विकास के नामपर गाँवों की विकृति का चित्रात्मक वर्णन 'इदन्नमम' उपन्यास में किया गया हैं। गाँवों की स्थिति इस में शोचनीय है।

3.2.7 ग्रामीण जीवन में हडपनीति :–

गाँवों में दुर्बलों की जमीन–जायदाद को हडप करनेवालों अनेक भेडियें होते हैं। 'इदन्नमम' उपन्यास में इस के सबूत मिलते हैं। 'इदन्नमम' उपन्यास में ग्रामीण जीवन में व्याप्त हडपनीति को उजागर किया गया है। बऊ और मंदा रतन यादव के गुंडों से छुटकारा पाने के लिए श्यामली में दादा पंचमसिंह के पनाह में जाती है। दादा के भाई गोविंदसिंह की बऊ के जमीन पर बुरी नजर है। वह अदालत–कानुनी में किए गए खर्च के बदले बऊ की जमीन–जायदाद हडपना चाहता है। "रजिस्ट्रार को घूस देकर गोविंदसिंह ने बऊ को अपाहिज दिखाया है। अँगुठा लगवा लिया केस के कागजों में कागज मिलाकर।"[54] इसतरह गोविंदसिंह बऊ की जमीन हडपकर अभिलाख सिंह को बेच देते हैं।

इसके साथ श्यामली में हुए सांप्रदायिक दंगों में मुस्लिमों को बेघर किया जाता है। गोविंदसिंह और नथु मुस्लिमों के घर–संपत्ति को हडप लेते हैं। "चीफसाब वाली बखरी अपने ककाजू के पास है। बन्नेसाब वाला घर नथूने दाब लिया सेंत–मेंत में।"[55] मुस्लिमों की विवशता का फायदा उठाकर उनके घर–संपत्ति को हडप लिया जाता है। रतनसिंह यादव भी अपने भाई के मरने के बाद भतीजों को फँसाकर उनकी जमीन हडपना चाहता है। अतः स्पष्ट है कि लेखिका ने 'इदन्नमम' उपन्यास में ग्रामीण जीवन में स्थित हडपनीति को उजागर किया है।

3.3.8 साहित्य में 'गांधीवाद' का पुनरागमन :–

'इदन्नमम' उपन्यास में दादा पंचमसिंह गांधीवादी विचारधारा के प्रतिनिधि पात्र हैं। वे गाँव की एकता तथा अखंडता के लिए हमेशा प्रयत्नरत रहते हैं। गाँव में निरविरोध चुनाव करना चाहते हैं। श्यामली में भडके सांप्रदायिक विद्वेष में वह सांप्रदायिक सद्भाव का कार्य करते हैं। वे लोगों को समझाते हैं कि गाँव की एकता में ही उसकी शक्ति है। दादा हिंदू–मुस्लिम एकता के पक्षधर हैं। इसी लिए सांप्रदायिक

विद्वेष के पश्चात् मस्जिद में हुई दुरावस्था को ठीक करने के लिए अपनी बहू कुसुमा को कहते हैं। दादा पंचमसिंह सारी उम्र इन्सानीयत के लिए जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। उनकी यही इच्छा है कि उनकी सारी उम्र मानवता की सेवा में गुजरे। इसीलिए वे मंदा को कहते हैं- "बिटिया हम तो उसी जागीर के वारीस बनना चाहते हैं। बस उसी में अपना जीवन भरा-पूरा मानेंगे।"[56] अतः स्पष्ट है लेखिका ने 'गांधीवाद' पर आतंकवाद कैसे हावी हो रहा है इस पर गंभीरता से सोचा है। दादा पंचमसिंह द्वारा साहित्य में लेखिका ने 'गांधीवाद' का पुनरागमन किया है।

*** निष्कर्ष :-**

उपर्युक्त विवेचन स्पष्ट होता है कि 'इदन्नमम' मैत्रेयी पुष्पा का बहुचर्चित उपन्यास है जिसमें तीन पीढ़ियों की नारियों की व्यथा की कथा है। बुँदेलखंड परिवेश पर आधारित इस ग्रामांचलिक उपन्यास में देहातों में बसे निरीह ग्रामीणों की व्यथा का स्वर गूँज उठता है। पूँजीपतियों के शोषण में दबे किसान भूमिहीन होकर विस्थापन की कगार से गुजर रहे हैं। वोटों की राजनीति ने ग्रामीणों का मोहभंग किया है। सांप्रदायिकता की विद्ग्धता से ग्रामांचल क्षतिग्रस्त हुए हैं। नई-पुरानी पीढ़ी का वैचारिक वैषम्य, स्त्री-पुरूष अवैध यौन-संबंध, जातिवाद और सांप्रदायिकता, किसान-मजदूरों के शोषण के खिलाफ मंदा का रचनात्मक आंदोलनात्मक कार्य, राजनीति की वसंगतियाँ, विकास के नाम पर विनाश का पैगाम, ग्रामीण जीवन में हडपनीति आदि संदर्भ बिंदुओं द्वारा 'इदन्नमम' बुँदेलखंड अँचल की यथार्थवादी कहानी प्रस्तुत करनेवाला सशक्त उपन्यास है। सांप्रदायिकता की विद्ग्धता से 'गांधीवाद' पर हावी हो रहे आतंकवाद के असामाजिक तत्त्वों पर विचार करके मैत्रेयी ने साहित्य में 'गांधीवाद' का पुनरागमन किया है।

3.3 अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'मुखडा क्या देखे'(1996), उपन्यास का विवेचनात्मक विश्लेषण :-

20 वीं सदी के प्रगतिशील रचनाकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह का नाम मुर्धन्य है। 'झानी-झीनी बीनी चदरियाँ' (1986),उपन्यास की सफलता के बाद सन् 1996 में प्रकाशित 'मुखडा क्या देखे' उपन्यास में लेखक ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का जायजा लिया है। 'मुखडा क्या देखे' का कथासूत्र भारतीय स्वाधीनता के कुछ बाद से लेकर इमरजेंसी तक फैला

हुआ है। इस पूरे घटना क्रम में ग्रामीण जीवन किस कदर प्रभावित होता है इसकी कहानी है 'मुखडा क्या देखे' लेखक में गाँव का आज्ञान, पिछड़ापन, विकास के लिए तडपते गाँव, बेरोजगारी के कारण नगरोन्मुखता, हिंदुओं के गाँव में अल्पसंख्यक मुसलमानों की स्थिति, ग्रामीण चुनाव नीति में चाचा–भतीजावाद, जातीय हीन मानसिकता आदि ग्रामीण–जीवन के विविध पहलुओं को विश्लेषित करते हुए मुस्लिम, हिंदू, खिश्चन संस्कृतियों को स्पष्ट किया है। "'मुखडा क्या देखे' उपन्यास किसी विशेष गाँव या विशेष पात्रों की कथा न होकर सामान्य भारतीय जनमानस की कथा है। इस उपन्यास को बहुसंख्यक अथवा अल्पसंख्यक समाज की दृष्टि से भी नहीं देखा जा सकता।"[57] अतः लेखक ने भव्य फलक पर ऐसे कुरूप मुखडे को बेनकाब करने का प्रयत्न किया है जो उपर से भव्य और दिव्य है। स्वाधीनता के पश्चात् हुए मोहभंग तथा चंद पूँजीपतियों के शोषण को सहने के लिए अभिशप्त समाज, हीन जातीय मानसिकता के तले दबे पशु–जीवन जी ने के लिए अभिशप्त मुस्लिम–दलित वर्ग, सांप्रदायिक विद्वेष, अकाल के कारण विस्थापन, गरीबी, बेरोजगारी, अज्ञान के अँधकार से जीवन में अंधकार आदि बिंदुओं के द्वारा विवेच्य उपन्यास का विश्लेषण किया है।

3.3.1 'अवैध यौन तथा अप्राकृतिक समलिंगी यौन–संबंधों का चित्रणः–

अवैध यौन–संबंध गाँव जीवन की विकृति है। इसका चित्रण विवेच्य उपन्यास में आया है। 'मुखडा क्या देखे' उपन्यास में अलि चुड़िहार के बेटे बुद्धू और भगत राम (तोते) की बेटी भूरी के बीच विवाहपूर्व अवैध यौन–संबंध है। दानों अकेले खेत में रासलीला करते रहते हैं। दानों निम्न जाति के होने के बावजूद भिन्न धर्म के भी है। भूरी उसे अकेले में मिलती है उन दोनों मे प्यार हो जाता है। एक रात भूरी बुद्धू को मिलने जाती है –"उसने आँखे मलते हुए पूछा तो एक हथेली ने उसका मुँह बंद कर दिया। फिर वह हथेली बुद्धू के मुँह से हटकर उसके पंजे के पास पहुँच गई। हथेली ने पंजे को धीरे से दबाया। बुद्धू उठ बैठा। अगले पल वह एक खटिया पर लेटा था और भूरी उसी तरह उसके पंजे को जकडे हुए थी।"[58] अंत में दोनों गाँव से भाग कर शादी कर लेते हैं।

विवेच्य उपन्यास में लेखक ने पं. सृष्टि नारायण पांडे और मुन्ना नचनियाँ के अप्राकृतिक समलिंगी अवैध संबंधों को चित्रित किया है। पं. सृष्टि नारायण पांडे की शादी नहीं हुई थी एक नौटंकी की में मुन्ना पर उनका दिल लगा था, तब से मुन्ना उनके साथ था – "पंडीतजी मुन्ना को स्त्री–वेश में ही साइकिल पर बिठाकर बलापुर

लौटते और खेतों के बीच बने इसी कमरे में उसे लेकर पड़ रहते।"[59] इसके साथ खलील और बिट्टन खाला की लडकी रनिया के बीच भी अवैध संबंध है। अतः स्पष्ट है 'मुखडा क्या देखे' में लेखक ने बुद्धु और भूरी, रनिया और खलील इनके द्वारा अवैध यौन-संबंधो तथा पं. सृष्टि नारायण पांडे और मुन्ना नचनियाँ इनके द्वारा अप्राकृतिक समलिंगी संबंधों को उद्घाटित किया है।

3.3.2 जातीय भेदाभेद ओर शोषण :–

गाँव जातीय भेदाभेद के कारण बँटे हुए हमें देखने को मिलते हैं। 'मुखडा क्या देखे' उपन्यास में लेखक ने हीन जातीय मानसिकता के चलते जमींदार तथा उच्चवर्गीय मुस्लिम दलित–मुस्लिमों का बद से बदतर शोषण करते हैं, इसका ब्यौरेवार वर्णन है। पूरा उपन्यास निम्न वर्गीय पर किए गए अत्याचार, शोषण का दस्तावेज जान पडता है। "हिंदी में एसे अनेक उपन्यास आए हैं, जो या तो बहुसंख्यक समाज की कहानी कहते हैं या फिर अल्पसंख्यक समाज की, लेकिन 'मुखडा क्या देखे' समग्र भारतीय समाज की कहानी कहता है, जिसमें संपन्न वर्ग के हिंदू और मुसलमान दोनों मिलकर हिंदू 'परजा' और मुसलमान 'परजा' का शोषण करते हैं।"[60]

गाँव के जमींदार पं. रामवृक्ष पांडे तथा पं. सृष्टि नारायण पांडे निम्न वर्ग के लोगों को हीनता की दृष्टि से देखते हैं। रामवृक्ष पांडे अपने बाग में चमार फुल्ली को अपने नातिन के साथ गिरे हुए आम बिनते देखते हैं तो चिल्ला उठते हैं –"ए फुल्ली। आपन भतार का बगिया समझ लिहे है का रे, भाग ज ससुई नाँही त बतावत हई अबहीं हम मुँडिया काटि के उहै पलरा में दबाइ देब .....।"[61] जब्बार मौलवी अलि चुड़िहार को अपने से हल्का मुसलमान समझते हैं। वे पं. सृष्टि नारायण से मिलकर अलि चुड़िहार के खिलाफ षड्यंत्र करते हैं। जब्बार मौलवी अपनी बीवी को सख्त हिदायत देते हैं कि चुड़िहारों से वह दूर रहे – "देखो सत्तार की अम्मा, मैं कह देता हूँ, तुम से, इन धुनियों–चुड़िहरों के घर तुम न जाया–आया करो। इन्हें सिर पर चढाने की कोई जरूरत नहीं हैं।"[62]

इसी जातीय भेदाभेद के कारण बुद्धू की माँ अपनी बहू भूरी को चुल्हा बासन नहीं करने देती –"मुलाँ बुद्धू, मन में कुछ खियाल न करना, बहू को अभी चुल्हा–बासन से दूर ही रखना।"[63]

चुनिया की शादी में कल्लू को पंगत में देखकर शब्बीर चुड़िहार गरम हो जाता है, क्योंकि कल्लू ने रहमान बेहना जाति की लडकी को रख लिया है। बहना जाति चुड़िहरों से भी हीन मानी जाती है। शब्बीर चुड़िहार चिल्ला उटता है-"साहबो। हम देख रहे हैं कि यहाँ कल्लू भी हमारे साथ बैठा हुआ है। उसी टाट पर, जहाँ हम बैठे हुए हैं। हम कल्लू के साथ बैठकर खाना नहीं खा सकते।"[64] वे खाने पर बहिष्कार डालते हैं। इसी जातीय भेद के कारण पं. सृष्टि नारायण 'रामलीला' मंडली की जगह कयथाने से ब्राह्मबस्ती में ले जाते हैं।

अतः स्पष्ट है कि हिंदू–मुस्लिम संपन्न परिवार जातीय हीन मानसिकता से ग्रस्त होकर दलित मुस्लिम, हिंदू परिवारों का शोषण करते हैं। इस मानसिकता ने गाँवों को इतना ग्रास लिया है कि इससे उभर पाना बहुत कठिण है। अतः निम्न तबके के लोग अपमानित तथा शोषणग्रस्त जीवन जीने के लिए मजबूर है।

3.3.3 'सांप्रदायिकता' का घिनौना मुखडा :–

'मुखडा क्या देखे' में ऐसे अनेक सूत्र हैं जो 'सांप्रदायिक' सद्भाव को तिलांजलि देकर गाँवों के बर्बर और घिनौने मुखडे को उद्घाटित करते हैं। उपन्यास में पं.रामवृक्ष पांडे जनसंघी विचारों के जमींदार हैं। वे आजादी के बँटवारे से नाखूश थे, क्योंकि वे 'संपूर्ण हिंदू राष्ट्र' के पक्षधर है। भारत को केवल हिंदू राष्ट्र बनाना चाहते हैं। इसी हिंदुत्ववादी विचारों के कारण उनको गाँव के अल्पसंख्यक मुस्लिमों पर गुस्सा आता हैं। अलि चुड़िहार का उनकी बेटी लता की शादी में न जाना, उनके हिंदुत्ववादी अहम् को ठेस पहुँचाता है और वे गुस्से में कहते हैं –"इस शुभ अवसर पर हलवाई आया, कोंहार आया, चमार और पासी आए, सिपाही नाउ भी आया; मगर अल्ली चुड़िहार क्यों नहीं आया ? जरूर उस मुसल्ले का दिमाग खराब हो गया है। अब बन गया पाकिस्तान, हिंदुस्तान में जगह न मिली तो पाकिस्तान चले जाएँगे।"[65] इसी विद्वेष की भावना के कारण वे अल्लि चुड़िहार को पीटते हैं। अल्ली भी इस अपमान का बदला लेने के लिए इलाहाबाद नेहरू के पास जाना चाहता है।

जबलपुर में हिंदू–मुस्लिम अंतर्धर्मीय विवाह के कारण दंगें छिडे जाते हैं। अलि को लगता है कि बँटवारे के कारण ही यह दंगें हो रहे हैं। लेकिन उसे सिंधी से पता चलता है कि –"जबलपुर के एक सेठ का लडका है अन्वर और दुसरे सेठ की लडकी है उषा, दोनों में कुछ प्यार-मुहब्बत हो गई, बस ..... नामुरादों को मौका मिल गया। लड़ पडे। अब न जाने कितने बेगुनाहों का खून बह रहा हैं।"[66] पं. नेहरू

के समझाने से दंगें शांत होते हैं। इसके साथ बुद्धू और भूरी के विवाह के उपरांत भी पं. सृष्टिनारायण गाँव का सांप्रदायिक माहौल गरम कर के अलि–चुड़िहार को पीटवाता है। रामदेव चमार के मुस्लिम धर्म स्वीकारने के पीछे भी अली का हाथ है, इस संदेह से सृष्टि नारायण सांप्रदायिक माहौल बनाकर बुद्धू को धमकाते हैं– "उ रामदेउवा चमार मुसलमान हो गया है। सत्तार तो है नहीं, हमें पूरा बिस्वास है कि उसे तुम्हारे अब्बा ने भडकाया होगा। उनसे कह दो कि गाँव में रहना है तो सोच–समझ कर रहे। नहीं तो बात फिर बहुतै बिगड जाएगी। समझे ?।"[67] पं. रामवृक्ष और पं. सृष्टि नारायण के सांप्रदायिक विचारों की विरासत उनका पोता अशोक चलाता है, और स्कूल में सांप्रदायिक माहौल बनता है। अल्लि चुडिहार के लडके बुद्धू को बार–बार मियाँ–मुसल्ला कहकर आतंकित करता है। उसे 'शाखा' में आने नहीं देता। इस दहशत से बुद्धू स्कूल छोड देता है।

अतः स्पष्ट है कि हिंदुओं के गाँव में अल्पसंख्य मुस्लिमों का जीवन सांप्रदायिकता के कारण हमेशा आतंकित रहता है। सांप्रदायिकता के घिनौने रूप को लेखक ने बडे चित्रात्मक रूप से स्पष्ट किया है।

3.3.4 ग्रामीण चुनावी राजनीति और चाचा–भतीजावाद :–

'मुखडा क्या देखे' उपन्यास ग्रामीण चुनावों का सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है। गाँव के संपन्न वर्गों की राजनीति में नेतागिरी, अवसरवादिता तथा चाचा–भतीजावाद का बडा चित्रात्मक वर्णन किया गया है। गाँव में जातीयता के आधार पर अनेक पार्टियाँ बनी हुई हैं। पांडे परिवार तो 'जनसंघी' है लेकिन दया शंकर पांडे काँग्रेसी विचारधारा से प्रभावित है। मुस्लिम समाज की राजनीति के बारे में सोच का दायरा बहुत सीमित है। वे नेहरू को ही 'संपूर्ण काँग्रेस' और 'जनसंघी' पार्टी को मुस्लिमों का दुश्मन समझते हैं। इसलिए अलि चुड़िहार अपने पत्नी से कहते हैं – "अरे बुद्धू की अम्माँ तुम नहीं समझती। जनसंघ पार्टी मुसलमानों की जानी दुश्मन है।"[68] बलापुर में चुनावों के समय तिज–त्यौहार का माहौल रहता है। काँग्रेस, जनसंघ, सोशालिस्ट तथा अनेकानेक निर्दलीय पार्टियों के लोग विपक्ष पार्टियों के खिलाफ जोर–शोर से प्रचार करते हैं। अशोक जनसंघ का प्रचारक है। संयुक्त सोशालिस्ट पार्टी के साथ उनका रोष मार–पीट में बदल जाता है।

चौधरी चरण सिंह ने बी.के.डी नाम आहिरों की अलग सी पार्टी बनाई है। औरतों का सिर्फ काँग्रेस पार्टी से बस इतना ही लगाव था कि वे एक बार इंदिराजी

को देख सके। पं. सृष्टि नारायण चुनाव में जीतने के लिए 'चाचा–भतीजा वाद' का इस्तेमाल करते हैं। 'जनसंघी' पार्टी के प्रति गाँव का रूखा व्यवहार देखकर वे अपने भतीजे को काँग्रेस पक्ष से चुनाव में खडे करते हैं और जीत जाने पर उसके द्वारा अपना वर्चस्व निर्माण करना चाहते हैं। वे भतीजे को कहते हैं –"यही राजनीति है। राजनीति और कहते किसे हैं ? अरे, तुम ठहरे काँग्रेसी। और हम तो भई अब जनसंघी मान ही लिए गए हैं। मुँला गाँव में अभी ठीक तरह से जनसंघ पर बिस्वास हुआ नहीं है। तुम पहले खडे हो जाओ फिर हमारे में बैठ जाना। इससे हमारी जीत सुनिश्चित जानो। क्या समझे ?"[69] इस तरह वे गाँव की राजनीति पर जमींदारी वर्चस्व निर्माण करना चाहते हैं।

स्पष्ट है, गाँव में विभिन्न जातियों की पार्टी का होना गाँव की विखंडता को स्पष्ट करता है। पं. सृष्टि नारायण राजनीति का गलत इस्तेमाल करके गाँव पर वर्चस्व निर्माण करना चाहते हैं। मुस्लिमों की राजनीति के प्रति सोच बहुत कम दिखाई देती है। गाँव की राजनीति में अवसरवादिता और चाचा–भतीजावाद का बोल बाला है।

3.3.5 ग्रामीण जीवन में हडपनीति :–

'मुखडा क्या देखे' उपन्यास में लेखक ने अशोक पांडे और सत्तार के द्वारा ग्रामीण जीवन में व्याप्त हड़पनीति को उजागर किया है। अशोक पांडे भोले–भाले ग्रामीण लोगों का फायदा उठाकर सरकार द्वारा 'भूमिहीन' की योजना के अंतर्गत दी हुई जमीनों को हडप लेता है – "हो चाहे न हो। समरथ के नहि दोस गोसाई। असोकवा नेता हो गया है। जो चाहता है, करता है। चमार–पासियों के वास्ते सरकार ने कुछ जमीन दी थी भूमिहीनवाली योजना में, मगर ऊ सब भी असोकवा ने हथिया लिया।"[70] दूसरी ओर सत्तार बाबू पोस्ट के जमा किए रूपयों को अपने घर और रोजागर में लगाता है। और बाद में रूपयों के मुआवजे देने के वक्त गाँव छोड भाग जाता है। "सत्तार पोस्ट मास्टर पर बलापुर पोस्ट आफिस में जमा बचत खातों में से बावन हजार रूपयों को गबन करने का आरोप था और वे मुअत्तल कर दिए गए थे।"[71] अतः स्पष्ट है कि अशोक और सत्तार ग्रामीणों के भोलपन का फायदा उठाकर उनकी खुशियों को भी हडप लेते हैं। गाँव- जीवन में शक्तिशालियों के द्वारा दुर्बलों की जमीनें तथा संपत्ति को हडप करने का अधिक प्रयत्न होता है, इसे लेखकने यहाँ दिखाया हैं।

3.3.6 अकाल–बेरोजगारी से विस्थापन और नगरोन्मुखता :–

'मुखडा क्या देखे' में अकाल और बेरोजगारी जैसी प्राकृतिक और सामाजिक समस्याओं के कारण लोग गाँव छोडते हैं। मध्य प्रदेश के दुल्लोपुर में बारिश के न होने से जबरदस्त अकाल पडता है। "इलाके में जबरदस्त अकाल पड़ गया। खेतों में बुआई नहीं हुई। जिन्होंने बोया वे अंकुर देखने के लिए तरस गए। न घर में दाना, न जेब में धेला। लोग काम की तलाश में गाँव छोडकर इधर–उधर जाने लगे।"[72]गाँव के लोग रोजगार तथा जीवन की तलाश में नगरों की ओर भाग रहे हैं।

अलि चुड़िहार बलापुर की सांप्रदायिक विद्‌ग्धता और जमींदारों के आतंक से तंग आकर दुल्लोपुर काम की ही तलाश में जाता है। लेकिन उसे रोजगार नहीं मिलता। अकाल के कारण तो बेरोजगारी की समस्या गंभीर होती है। भूखे मरने की नौबत के कारण लोग काम की तलाश में नगरों की ओर बढ़ते हैं –"इलाके के तमाम लोग काम की तलाश में नौरोजबाद जा रहे हैं। वहाँ कोयले के खदानों में काम मिल रहा है। तुम चलोगे इलाहाबादी भाई ? में तो जा रहा हूँ।"[73] अतः स्पष्ट है कि अकाल और बेरोजगारी के कारण लोग विस्थापित होकर नगरों की ओर बढ रहे हैं।

3.3.7 शोषण के खिलाफ संगठन की भावना :–

आज गाँवों में शोषण के खिलाफ संघर्ष शुरू हुआ है। 'मुखडा क्या देखे' में बवाली एक मात्र पात्र है, जो शोषण के खिलाफ आवाज उठता है। वह 'क्रांति' का प्रतीक है, क्रांति करना चाहता है। बवाली लेखक के विचारों का प्रतिनिधित्व करनेवाला उपन्यास का जीवंत पात्र लगता है। लेखक के प्रगतिवादी विचारों का वह वाहक है। इस विषय में ब्रह्‌म देव मिश्र लिखते हैं –"अब्दुल बिस्मिल्लाह मार्क्सवादी विचारधारा के प्रगतिशील रचनाकार हैं, और उनके चारों उपन्यासों में शोषित शक्तियों के संघर्ष को उबारा गया है।"[74] इस संघर्ष को बवाली के चरित्र द्‌वारा देखा जा सकता है। वह किसान और मजदूरों को संगठित करके जमींदारों के शोषण के खिलाफ क्रांति करना चाहता है। वह बुद्‌धू को समझाते हुए कहता है –"देखो बुद्‌धू भाई क्रांति तभी होगी जब इस देस के किसान और मजदूर संगठित होंगे। और यह तभी होगा जब कि गाँव–गाँव में किसानों और मजदूरों का संगठन बने।"[75] बवाली को पूँजीपति व्यवस्था के प्रति क्रोध है। वह जमींदारों के शोषण को खत्म कर के किसान–मजदूरों का राज्य लाना चाहता है। इसीलिए जमींदारों द्‌वारा सृष्टि नारायण के खून में फसाये गए लोगों

को छुडाना चाहता है। वह गाँव में खुशहाली लाना चाहता है। वह गाँव में एकता लाना चाहता ताकि इस शोषण का मिलकर मुकाबला किया जा सके। वह कहता है –"पता नहीं ? ई जुलम, ई सोसण का सब लोग बरदास करेंगे ? बोलो? यही से हम कहते हैं कि सब लोग एक होकर उनका मुकाबला करें। जिंदगी में खुसहाली तभी आएगी, जब क्रांति होगी। अउर क्रांति तभी होगी जब किसान-मजूर सब एक होंगे ...।"[76] स्पष्ट है बवाली लेखक के प्रगतिवादी विचारों का वाहक है जो किसान–मजदूरों की क्रांति, संगठन से शोषण का मुँहतोड जवाब देना चाहता है।

3.3.8 'मुखडा क्या देखे' समग्र मूल्यांकन :–

'मुखडा क्या देखे' उपन्यास के द्वारा लेखक ने दूर–दराज पहाडियों में बसे अँचलों के शोषित ग्राम-जीवन को अपने लेखणी से वाणी दी है। हिंदू–मुस्लिम समाज में व्याप्त हीन जातीय संकीर्णता के कारण निम्न तबके के लोगों के शोषण को रचनाकार ने भलिभाँति व्यक्त किया है। ग्रामीण-जीवन में जमीदारों की शोषण पर टिकी व्यवस्था निम्न तबके को बेहाल कर देती है। धार्मिक कट्टरता तथा धर्मप्रचार गाँव के लोगों को 'सांप्रदायिकता' में झुलसाने तथा 'धर्मांतरण' के लिए मजबूर करते हैं। गाँव में विकास के नामपर अनेक विकृतियाँ फैल गई है। विविध योजनाओं में किसानों की जमीनें तथा रूपयों को हडप लिया जाता है। गाँव में बिजली तो आयी लेकिन बिजली कनेक्शन पाने के लिए घूँस देनी पडती है, तब जाकर घर प्रकाशित होता है। गाँव की राजनीति में अवसरवादिता और चाचा–भतीजावाद का बोल बाला है। अकाल और बेरोजगारी के कारण लोग गाँव से नगरों की ओर बढ रहे हैं। फिर भी लेखक बवाली के द्वारा क्रांति लाना चाहता है यही उनके रचना कार्य का वैशिष्ट्य है। इस विषय में ब्रह्मदेव मिश्र लिखते हैं –"समाजवादी प्रगतिशील रचनाकार गहरे आत्ममंथन के पश्चात् मार्क्सवाद की सफलता का ढिंढोरा पीटने के बजाय भारतीय परिवेश में उसकी प्रासंगिकता तलाशने की दिशा में आगे बढ़े और अब्दुल बिस्मिल्लाह ऐसे ही रचनाकारों में ख्यात है।"[77]

रचनाकार ने एक ऐसे विकृत चेहरे को बेनकाब किया जो ऊपरी सतह से तो बडा है लेकिन अंदर से उतना ही कुरूप है। गाँव की राम-राज्यवाली संकल्पना को यहाँ तिलांजलि मिलती है। विकास के नामपर लोगों लूटा जाता है। यह विकास खोखला है। इस रचना के अंतर्वस्तु और शिल्प पर ठेठ देसी रंगों एवं संस्कारों की छाप है। इसका समग्र मूल्यांकन करते हुए शशि भारद्वाज कहते हैं –"सन् 1996 में

अब्दुल बिस्मिल्लाह का 'मुखडा क्या देखे' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ जो आकार की दृष्टि से तनिक व्यापक फलक का उपन्यास होने पर भी किसी भास्वर विजन से युक्त नहीं है। इन में एक निम्न वर्गीय या दलित–मुस्लिम परिवार की कहानी प्रस्तुत की गई है, जो गाँव के जमींदार के अत्याचार के कारण गाँव छोडकर चला जाता है, पर कुछ वर्ष बाद लौटने को विवश होता है। लेखक ने गाँव में होनेवाले दुःखद परिवर्तनों, विशेषकार सांप्रदायिक दुर्भाव में वृद्धि का अंकन किया है। पर सर्जनात्मक दृष्टि से उपन्यास नितांत साधारण है।"[78]

अतः स्पष्ट है 'मुखडा क्या देखे' संपूर्ण भारतीय समाज की कहानी है, जो भारतीय समाज व्यवस्था के कुरूप मुखडे को प्रस्तुत करती है।

* निष्कर्ष :–

सन् 1996 में प्रकाशित 'मुखडा क्या देखे' लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह का बहत् उपन्यास है। स्वाधीन भारत के उन तमाम गाँवों के जीवन के प्रतिबिंब को दृश्यमान करता है, जो खोखले विकास के चलते शोषण व्यवस्था की दर–दर की ठोकरें खा रहे हैं। अवैध यौन और अप्राकृतिक समलिंगी संबंधों का चित्रण इसमें किया गया है। अकाल बेरोजगारी के कारण लोग विस्थापित हो रहे हैं। जातीयता के आधार पर बनी पार्टियाँ गाँव राजनीतिक विखंडन को ही स्पष्ट करती है। फिर भी उस में क्रांति की आशा है। बवाली क्रांति से मजदूर–किसानों का राज लाना चाहता है। अतः कथासूत्र की दृष्टि से यह एक सफल उपन्यास है।

* समन्वित निष्कर्ष :–

प्रस्तुत विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि वीरेंद्र जैन के 'डूब' (1991), मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम'(1994), और अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'मुखडा क्या देखे'(1996), ये तीनों उपन्यास 20 वीं सदी के अंतिम दशक की सशक्त रचनाएँ हैं। विवेच्य उपन्यास ग्रामीण परिवेश का यथार्थवादी मूल्यांकन करते हुए उनके सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को उद्घाटित करने में काफी सफल है।

वीरेंद्र जैन के उपन्यास 'डूब' (1991), में विकास प्रक्रिया के तले दबे ग्रामीण जनता के शोषण की गाथा को वाणी देने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। संपूर्ण उपन्यास में 'विस्थापन' की समस्या केंद्र में है। आजादी के पश्चात् विकास के

नामपर ग्रामांचलों में दाखिल विस्थापन तथा विस्थापित ग्रामीणों की पीड़ा को लेखक ने संवेदना के साथ स्पष्ट किया है। भ्रष्ट सरकारी नीति और सामंती वर्ग के हथकंडें भोले–निरीह ग्रामीणों का शोषण करते हैं लेकिन विवेच्य लेखकों ने इस शोषण के खिलाफ आंदोलन की भी उद्‌भावना को प्रस्तुत किया है। जातीय भेदा–भेद, धार्मिक भेदा–भेद के बावजूद समान जातीय एकात्मता पर इस उपन्यास में बल दिया है। शैली और भाषा की दृष्टि से भी यह एक बेजोड कृति है। इस दमनकारी व्यवस्था ने सब गाँवों को डूबा दिया है, जो शीर्षक की सार्थकता का सच्चा प्रमाण है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम' (1994), बुँदेलखंड के उन तमाम अँचलों में बसे लोगों की कथा है, जो यातनाओं, संकटों में अपना पूरा जीवन स्वाहा कर रहे हैं। विकास योजनाओं के नामपर विस्थापन से उजाडे गए गाँवों के किसान आज भूमिहीन मजदूर बन गए हैं। मजदूरों के नारकीय जीवन का कच्चा–चिट्‌ठा मैत्रेयी ने व्यक्त किया है। मजदूरी का मुआवजा शराब के रूप में देने के कारण मजदूर अपना मस्तिष्क और अस्तित्व दोनों खो चुके हैं। फिर भी मजदूरों के शोषण के खिलाफ 'मंदा' आंदोलन के लिए खडी होती है जो आज की अग्रणी समाज सेविका मेधा पाटकर की याद दिलाती है। नई–पुरानी पीढ़ियों का सजीव संघर्ष कथानक की पृष्ठभूमि है। विकास के नाम पर गाँव अँचलों को विकृत बनाना, गाँव की गंदी राजनीति, हडपनीति को दर्शाते हुए लेखिका ने 'सांप्रदायिकता' जैसे असामाजिक तत्त्व पर गहराई से चिंतन किया है। दादा पंचमसिंह द्‌वारा गांधीवादी विचारों को नवसंजीवनी देने का कार्य प्रशंसनीय है। बुँदेलखंडी भाषा में लिखा गया 'इदन्नमम' उपन्यास अत्यंत रोचक एवं पठनीय नारी प्रधान उपन्यास है। 'मंदा' का समर्पित जीवन 'इदन्नमम' शीर्षक की सार्थकता को गवाही देता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यास 'मुखडा क्या देखे' (1996), महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, जो स्वाधीन भारत के उन तमाम गाँवों के जीवन के प्रतिबिम्ब को दृश्यमान करता है, जो खोखले विकास की दमनकारी व्यवस्था की चपेट में आए हैं। लेखक ने उस ग्रामांचलिक समाज जीवन का वर्णन किया है, जो समस्त भारत के ग्राम–जीवन का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता हैं। गाँवों की हीन जातिगत संकीर्णता के कारण हिंदुओं के गाँवों में अल्पसंख्यक मुस्लिमों की स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। पूँजीपति जमीदारों के नारकीय शोषण से निजात पाने के लिए बवाली द्‌वारा क्रांति का मार्ग आपनाना उपन्यास की सफलता का द्योतक है। सांप्रदायिक विद्‌ग्धता से आहत ग्रामांचलों का लेखक ने सूक्ष्मता से वर्णन किया है। कथासूत्र की दृष्टि से यह एक

सफल उपन्यास है। लेखक ने भारतीय गाँवों के उस कुरूप मुखडे को बेनकाब किया है जो यथार्थवादी है। अतः शार्षक की सार्थकता की दृष्टि से भी यह बेजोड कृति है।

संदर्भ – सूची

1. 'डूब' किताब के मल पृष्ठ से उद्धृत
2. वीरेंद्र जैन, 'डूब' पृ. क्र. 82
3. वही, पृ. क्र. 64
4. वही, पृ. क्र. 122
5. वही, पृ. क्र. 155
6. सम्पा. मनोहरलाल, 'वीरेंद्र जैन का साहित्य', पृ. क्र. 24
7. वीरेंद्र जैन, 'डूब', पृ. क्र. 67
8. वही, पृ. क्र. 11
9. वही, पृ. क्र. 33
10. वही, पृ. क्र. 67
11. वही, पृ. क्र. 67
12. वही, पृ. क्र. 70
13. सम्पा. मनोहरलाल, 'वीरेंद्र जैन का साहित्य', पृ. क्र. 22
14. सम्पा. मनोहरलाल, 'वीरेंद्र जैन का साहित्य', पृ. क्र. 31
15. वीरेंद्र जैन, 'डूब', पृ. क्र. 39
16. वही, पृ. क्र. 154
17. वही, पृ. क्र. 241
18. वही, पृ. क्र. 199
19. वीरेंद्र जैन, 'डूब', पृ. क्र. 245
20. वही, पृ. क्र. 201
21. सम्पा. मनोहरलाल, 'वीरेंद्र जैन का साहित्य', पृ.क्र. 22
22. वीरेंद्र जैन, 'डूब' पृ. क्र. 266
23. वही, पृ. क्र. 65
24. वही, पृ. क्र. 173

25. रामशरण जोशी, 'डूब', मल पृष्ठ से उद्धृत
26. वीरेंद्र जैन, 'डूब', पृ. क्र. 204
27. वही, पृ. क्र. 218
28. सम्पा. मनोहरलाल, 'वीरेंद्र जैन का साहित्य', पृ. क्र. 24
29. वीरेंद्र जैन, 'डूब', पृ. क्र. 280
30. वही, पृ. क्र. 279
31. सम्पा. मनोहरलाल, 'वीरेंद्र जैन का साहित्य', पृ. क्र. 23
32. मनोहरलाल, 'वीरेंद्र जैन का साहित्य', पृ. क्र. 13
33. सम्पा.मनोहरलाल, 'वीरेंद्र जैन का साहित्य', पृ. क्र. 23
34. राजेंद्र यादव, 'इदन्नमम', भूमिका से उद्धृत
35. मैत्रेयी पुष्पा, 'इदन्नमम', पृ. क्र. 105
36. राजेंद्र यादव, 'इदन्नमम' भूमिका से उद्धृत
37. मैत्रेयी पुष्पा, 'इदन्नमम', पृ. क्र. 58
38. वही, पृ. क्र. 141
39. वही, पृ. क्र. 79–80
40. वही, पृ. क्र. 270
41. वही, पृ. क्र. 273
42. वही, पृ. क्र. 369
43. वही, पृ. क्र. 297
44. वही, पृ. क्र. 299
45. वही, पृ. क्र. 304
46. वही, पृ. क्र. 205
47. वही, पृ. क्र. 212
48. वही, पृ. क्र. 21
49. वही, पृ. क्र. 186
50. वही, पृ. क्र. 382
51. वही, पृ. क्र. 182
52. वही, पृ. क्र. 202
53. वही, पृ. क्र. 237
54. वही, पृ. क्र. 193

55. मैत्रेयी पुष्पा, 'इदन्नमम', पृ. क्र. 277

56. वही, पृ. क्र. 282

57. अब्दुल बिस्मिल्लाह, 'मुखडा क्या देखे', मलपृष्ठ से उद्धृत

58. वही, पृ. क्र. 147

59. वही, पृ. क्र. 118

60. वही, किताब के मलपृष्ठ से उद्धृत

61. वही, पृ. क्र. 29

62. वही, पृ. क्र. 32

63. वही, पृ. क्र. 172

64. वही, पृ. क्र. 109

65. वही, पृ. क्र. 18

66. वही, पृ. क्र. 86

67. वही, पृ. क्र. 213

68. वही, पृ. क्र. 131

69. वही, पृ. क्र. 201

70. वही, पृ. क्र. 175

71. वही, पृ. क्र. 188

72. वही, पृ. क्र. 74

73. वही, पृ. क्र. 75

74. ब्रह्मदेव मिश्र,'समकालीन कथा-साहित्य एक रूक्न', पृ. क्र. 116

75. अब्दुल बिस्मिल्लाह, मुखडा क्या देखे, पृ. क्र. 212

76. वही, पृ. क्र. 219

77. ब्रह्मदेव मिश्र, समकालीन कथा–साहित्य एक रूक्न', पृ. क्र. 102–03

78. शशि भारद्वाज,'भारतीय उपन्यास अंतिम दशक' 1991–2000 पृ.क्र. 276

❋ ❋ ❋